ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-4* Issue-5* June- 2019
Innovation The Research Concept

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

प्रवीण सैनी
असिस्टेंट प्रोफेसर,
संगीत वादन विभाग,
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज,
मुरादाबाद

प्रस्तावना

अपने मन के भावों और विचारों को प्रकट करना अभिव्यक्ति कहलाता है। अभिव्यक्ति की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति में होती है तथा यह उसकी भावनाओं, कल्पनाओं और चिंतन से प्रेरित होती है। मनुष्य में अपनी भावना, विचार या मत को अभिव्यक्त करने की इच्छा कभी–कभी इतनी प्रबल हो जाती है कि मनुष्य अकेला होने पर अपने आपसे बातें करने लगता है। लेकिन अभिव्यक्ति की सदोषता या निर्दोषता का प्रश्न सभी उत्पन्न होता है जब अभिव्यक्ति व्यक्तियों के अथवा समूहों के बीच संवाद का रूप ग्रहण करती है।

मानव सभ्यता की शुरूआत से ही विचारों का आदान–प्रदान होता रहा है। विचारों के आदान–प्रदान से मनुष्य का वैयक्तिक विकास तो होता ही है, समाज की सामाजिकता भी इसी से बनती है और उसका विकास भी होता है। वैसे शायद ही कभी सभ्यता के इतिहास में अभिव्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दी गयी है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ दो प्रकार के संवादों से है– एक मीडिया द्वारा सूचनात्मक प्रकार के संवाद तथा दूसरा व्यक्तिगत स्तर पर विचारों या मतों का प्रकाशन। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सूचनाओं के स्वतंत्र प्रभार से समस्त राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। विशेष रूप से वैज्ञानिक और आर्थिक प्रसंगों में। इसके अलावा प्रजातंत्र में 'प्रेस' को एक सकेतक कहा गया है, जो समस्त राजनीतिक दुव्यापारों पर कड़ी नजर रखता है तथा प्रजातंत्र को सही दिशा देता है। प्रजात्रंत में प्रेस की दोहरी भूमिका होती है– एक ओर वह किसी रचनात्मक प्रवृत्ति के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाते हैं तथा जनमत से सरकार को परिचित कराता है तथा दूसरी ओर सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों से वह जनता को परिचित कराता है। यदि सरकार की नीतियाँ और कार्यक्रम राष्ट्रीय और सामाजिक हित में है, तो प्रेस के जरिये सरकार को जनसमर्थन भी मिलता है।

मानवीय गरिमा को सुनश्चित करने के उद्देश्य से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को आवश्यक माना गया है। यह अकारण नहीं है कि भारत सहित विश्व के अनेक देशों में संवैधानिक स्तर पर व्यक्तियों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिली हुई है। इसके पीछे का उद्देश्य यही है कि नागरिकों के नैसर्गिक अधिकारों के रूप में उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को संरक्षित किया जाए, ताकि मानव के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास का मार्ग प्रशस्त्र हो सके तथा उनके हितों की अभिवृद्धि और रक्षा हो सके। वस्तुतः अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार न सिर्फ लोकतांत्रिक जीवन पद्धति की ठोस नींव है, बल्कि उसका अपरिहार्य अंग भी है। इस तरह के अधिकार को लोकतंत्र की जीवंतता के लिए भी आवश्यक माना गया है, क्योंकि लोकतंत्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का होना आवश्यक माना गया है।

स्वतंत्रता चाहे अभिव्यक्ति की हो, चिंतन की हो अथवा काम करने की हो, उसे मानव विकास एवं शोषण मुक्त समाज के लिए आवश्यक तो माना गया है, किन्तु इस स्वतंत्रता का यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिए कि हम उच्छृंखल एवं अनियंत्रित होकर मनमाना व्यवहार करने लगे। यह बात अभिवयक्ति की सवतंत्रता पर भारतीय एवं वैश्विक दोनों परिप्रेक्ष्यों में लागू होती है। कोई भी स्वतंत्रता पर भारतीय एवं वैश्विक दोनों परिप्रेक्ष्यों में लागू होती है। कोई भी स्वतंत्रता इतनी आत्यांतिक एवं असीमित नहीं होनी चाहिए कि उससे लोकहित प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो तथा सामाजिक समरसता एवं सौहार्द पर आघात पहुँचे। वस्तुतः अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपभोग करने वाले नागरिकों के साथ यह जिम्मेदारी स्वतः जुड़ जाती है कि वे मनमाने ढंग से इसका इस प्रकार इस्तेमाल न करें, जिससे कि लोकहितों एवं कानून–व्यवस्था पर आंच आए। यानी इस अधिकार का प्रयोग करते हुए एक लक्ष्मण–रेखा का निर्धारण स्वयं नागरिकों को कर लेना चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग करते हुए राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितों को सर्वोपरि रखना चाहिए तथा इसके निर्वाध, निरंकुश एवं मनमाने प्रयोग से बचते हुए इसका युक्तिसंगत प्रयोग करना चाहिए। नागरिकों को अपने संतुलित एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए इस अधिकार का प्रयोग करना चाहिए न कि सनसनी फैलाने अथवा माहौल को बिगाड़ने के लिए।

हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के युक्तिसंगत प्रयोग की बात अवश्य करते हैं किंतु यह दुर्भाग्यजनक है कि भारत सहित विश्व के अनेक देशों में इसके मनमाने प्रयोग, जिसे दुरूपयोग करना चाहिए के द्वारा वितंडा खड़े किए जा रहे हैं, तो कहीं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अतिवाद एवं आतंकवाद के प्रहार भी देखने को मिल रहे हैं। स्पष्ट है कि इस अधिकार को लेकर हमने अपनी जिम्मेदारियों से मुंह मोड़ा है और कहीं–न–कहीं उस जिम्मेदारी का निर्वहन करने में असफल रहे हैं, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ जुड़ी है।

वस्तुतः वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की अवधारणा तो अत्यन्त व्यापक है। इसके अंतर्गत, अपनी भावनाओं और अभिव्यक्त करने के सभी अधिकार शामिल हैं। यही कारण है कि इस व्यापक स्वतंत्रता के दुरूपयोग की दुष्प्रवृत्तियां भी पनपीं, जिनसे अप्रिय एवं कटु स्थितियां भी पैदा हुई। स्पष्ट है कि हमने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण किया।

आज न सिर्फ भारत में, बल्कि विश्व के अनेक देशों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रयोग के कारण अप्रिय स्थितियां पैदा हो रही हं। सोशल मीडिया के आविर्भाव के बाद से तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के दुरूपयोग की बाढ़–सी आ गई है, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार की आड़ में कभी दूसरों के धर्मों का अपमान किया जाता है, तो कभी उनका मजाक उड़ाया जाता है। कभी चित्रों के माध्यम से माहौल को बिगाड़ने की कोशिशें की जाती हैं। इन दुष्कृत्यों को बड़ी ढीठता के साथ 'मुक्त अभिव्यक्ति' की संज्ञा दी जाती है, जो कि उचित नहीं है। इसका आशय तो यही हुआ कि हम अभिव्यक्ति के न तो सही अर्थ को ही समझते हैं और न ही उससे जुड़ी जिम्मेदारी को। अभिव्यक्ति का अर्थ मनमाना आचरण नहीं है वस्तुतः अभिव्यक्ति तो एक प्रकार का सौहार्दपूर्ण भावबोधक अभिविन्यास होता है, जो व्यक्ति के संदर्भ में पसंदगी एवं नापसंदगी को व्यक्त करने के संवेगात्मक तरीके के रूप में अभिहित किया जाता है। अभिव्यक्ति से भाव एवं संवेदना का जुड़ाव होता है, न कि कठोरता एवं असंयतता का। अभिव्यक्ति परिमार्जित, संयत एवं भावबोधक होनी चाहिए तथा इसमें एक नेक नागरिक

की नैतिक एवं सामाजिक जिम्मेदारी के भाव भी निहित होने चाहिए। अनियंत्रित एवं अमर्यादित अभिव्यक्ति के अनेकानेक दुष्परिणाम हो सकते हैं।

अक्सर अमर्यादित अभिव्यक्तियों के कारण तूफान खड़े हो जाते हैं। सामाजिक समरसता जहां प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है, वहीं देशों की एकता और अखंडता के प्रति भी खतरा बढ़ जाता है। परस्पर सौहार्द में कमी आती है, तो अशांति एवं अस्थिरता भी बढ़ती है। एक स्थिति यह भी पैदा होती है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर असहमतियों को लेकर हिंसात्मक गतिविधियां बढ़ जाती हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार से जायज नहीं ठहराया जा सकता है। आतंकवाद बढ़ता है, तो समाज में अतिवादिता भी बढ़ जाती है। हिंसा–प्रतिहिंसा की घटनाएं मानवता को कलंकित करने लगती हैं। अमर्यादित एवं अनियंत्रित अभिव्यक्तियां जहां लोगों को उकसाने का काम करती हैं वहीं उनकी भावनाओं एवं मान–सम्मान को भी आहत करती हैं। उच्छृंखल एवं अमर्यादित अभिव्यक्तियों के नुकसान ही नुकसान है, फायदा कोई नहीं है। ये और अधिक घातक तब हो जाती है जब इन्हें समाज के जिम्मेदार लोगों द्वारा अपनी जिम्मेदारी की उपेक्षा एवं अवहेलना कर व्यक्त किया जाता है।

श्रेष्ठ मानवतावादी व्यवस्था, जीवंत लोकतंत्र एवं मानवीय गरिमा को देखते हुए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार आवश्यक एवं औचित्पूर्ण है। उतना ही औचित्पूर्ण एवं आवश्यक यह भी है कि हमारे बीच अभिव्यक्तियों की भावबोधक भूमिका हो। यानी अभिव्यक्तियां ऐसी हों, जो कि तनाव को कम करें, समाज के विभिन्न सदस्यों के बीच आपसी तालमेल एवं भाईचारे को बढ़ाएं, सामाजिक समरसता एवं सहिष्णुता को मजबूती प्रदान करें। यानी ये भावबोधक भूमिका निभाएं, न कि विध्वंसक।

हमें यह समझना चाहिए कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की एक सीमा होती है तथा इसके साथ एक जिम्मेदारी भी जुड़ी होती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के आधार पर किसी धर्म, समाज, व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूहों का निरादर और अपमान किया जाना जायज नहीं है। यह भी जायज नहीं है कि ईश्वर के नाम पर आतंक फैलाया जाए अथवा हत्याएं की जाएं।

जहां तक भारतीय संविधान का प्रश्न है, तो इसमें जिन स्वतंत्रताओं पर बल दिया गया है, उनमें से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी एक है। इसे हमारे मूल अधिकारों के रूप में स्थान मिला हुआ है। इसके दुरूपयोग की संभावनाओं को भी ध्यान में रखते हुए मूल अधिकारों को अनेक परिसीमाओं एवं प्रतिबंधों से घेर कर भी रखा गया है। वस्तुतः ये मल अधिकार न तो निर्बाध ही हैं और न ही किसी मायने में परम अधिकार ही हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 स्वतंत्रता के अधिकारों का वर्णन करते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) के अंतर्गत प्रत्येक भारतीय नागरिक को वाक् तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार तो प्रदान किया गया है, किन्तु इसके दुरूपयोग की संभावना को ध्यान में रखते हुए यह भी व्यवस्था बनाए रखी गई है कि कोई भी ऐसा अधिकार न तो आत्यांतिक रूप से प्रदान ही किया जा सकता है और न ही नितांत निरंकुश एवं उच्छृंखल ही हो सकता है। इसी कारण अनुच्छेद 19(2) में उन शर्तों का उल्लेख है, जिनके आधार पर वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निबंधन लागया जा सकता है।

राजनैतिक स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता एक दूसरे से जुड़ी होती है। मैं आपसे आग्रह करूँगा कि आप जरा संविधान के अनुच्छेद 19 (जैसा कि मूल रूप में इसे रखा गया है) को अनुच्छेद 4 और 21 के साथ मिलाकर

देखिये तो पता चलेगा कि ये तीनों मिलकर संविधान में निहित मौलिक अधिकारों को समग्रता देते हैं, जैसा कि इस रूप में हमने खुद को दिया है। संविधान निर्माता विद्वान थे और उन्होंने राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों को बराबरी पर रखा। बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा (भाग ए) कारोबार, व्यापार और पेशागत स्वतंत्रता (भाग जी) के बराबर है। कोई संस्था बनाने की स्वतंत्रता (भाग सी) संपत्ति की स्वतंत्रता (भाग एक) के बाबर हैं। वे जानते थे कि कैसे स्वतंत्रता का एक समूह दूसरे को मजबूत करता है और कैसे एक तरह की स्वतंत्रता के बिना दूसरे तरह की स्वतंत्रता अर्थहीन हो जाएगी।

संविधान के जिन अनुच्छेदों के समूह के बारे में कम लोग जानते हैं, वह है अनुच्छेद 301 से 305 का समूह। यदि इसकी सही व्याख्या की जाए तो अनुच्छेद 301 'एक राष्ट्र, एक अर्थव्यवस्था' के विचार को स्थापित करता है। इस अनुच्छेद के मुताबिक, 'भारत के पूरे क्षेत्र में लेनदेन, व्यापार और समागम पूरी तरह से स्वतंत्र होगा। इस साहसिक विचार को व्याख्या के जरिये दबाया गया और अमल में निष्प्रभावी कर दिया गया। राज्य सरकारें और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर संपत्ति अर्जित करने वाले तब तक खुश थे, जब तक कि उनके मामले उच्च न्यायालयों तक नहीं पहुंच गए।

यदि किसी व्यक्ति के विचार सामाजिक विश्वासों तथा मान्यताओं के विरूद्ध हैं और उनका मानसिक स्वास्थ्य पर भी बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, तो ऐसे विचारों पर निश्चित रूप से प्रतिबंध लगा देना चाहिए। अब यहां प्रश्न खड़ा होता है कि आखिर बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह, पैगम्बर मुहम्मद आदि के विचार भी तो सामाजिक मान्यताओं, धारणाओ ंएवं विश्वासों के प्रतिकूल थे, फिर प्रतिकूल विचारों के प्रति हमारा दृष्टिकोण किस प्रकार का होना चाहिए? स्पष्ट है किसी आलोचना अथवा विचार सामाजिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हो, उसकी अभिव्यक्ति में कोई बुराई नहीं है, लेकिन जिस आलोचना का लक्ष्य केवल साम्प्रदायिक सौहार्द बिगाड़ना है, उस पर प्रतिबंध लगाना अनिवार्य हो जाता है।

अभिव्यक्ति की सवतंत्रता के इस पूरे विवाद में पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थकों को विस्तृत मानसिकता वाला तथा इसके विरोधियों को पिछड़ा और रूढ़िवादी समझा जाता है। परन्तु आज समाज में दोनों ही प्रकार के लोग रूढ़िवादी प्रतीत होते हैं। पूर्ण स्वतंत्रता के लिए हास्य–तीव्रा मचाने वाले लोग अभिव्यक्ति को बस एकपक्षीय मानने की भूल करते हैं और विरोधी अपने विचारों को इतना महत्व दे देते हैं कि उनके तर्क ही उनके गले की हड्‌डी बन जाते हैं। आज सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि कोई भी व्यक्ति समझौतावादी रूख अपनाता ही नहीं है या तो किसी विचार को पूरी तरह गलत व्यक्त किया जाता है या पूरी तरह सही। संवाद के दोनों पक्ष दो समानांतर धाराओं में ही चलते रहते हैं और उनके सम्मिलन की कोई संभावना ही नहीं होती। विरोध या समर्थन में लंबी–चौड़ी बहसों का क्रम चलता ही रहता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति उदार दृष्टिकोण के कारण कभी–कभी लोग फाँसी या सांप्रदायिक प्रवृत्ति के शिकार होकर गुमराह हो जाते हैं। हमें ऐसी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना चाहिए तथा अपने विचारों और धारणाओं के प्रति एक तर्कपूर्ण दृष्टिकोण रखते हुए चलना चाहिए तब ही अनावश्यक विचारों को टाला जा सकता है।

अभिव्यक्ति स्वतंत्रता की निर्दोयता या सदोयता कभी निरपेक्ष नहीं हो सकती, पूर्णनहीं हो सकती। अथवा जो मापदंड उचित और प्रासंगिक है, वे कल भी उचित और प्रासंगिक ही रहे, यह जरूरी नहीं है। वैचारिक दृष्टिकोणों

तथा सामाजिक मानदंडों में बदलाव होते रहते हैं तथा यही काम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के माध्यम सें हो सकता है, अतः इन्हें सामान्य ढंग से लिया जाना चाहिए। परिवर्तन सदा बेहतरी के लिए होता है, हमें ऐसे में आशावादी सोच लेकर चलना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *निबन्ध मंथन, पृ0– 53*
2. *अमर उजाला, रविवार 2, अक्टूबर 2016*
3. *इण्टरनेट द्वारा*
4. *भारतीय संविधान– डी0डी0 वसु*
5. *अमर उजाला, नवम्बर 2013*
6. *हिन्दुस्तान, दिसम्बर 2005*